प्राचीन भारत पर फारसी आक्रमणः कारण व प्रभाव

*डॉ. सोमेश कुमार सिंह

शोध सांराश

युद्धों का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। भारत में वैदिक काल में सर्वप्रथम हमें दाशराज्ञ युद्ध का वर्णन मिलता है। तत्पश्चात हमें अनेकों युद्धों के विवरण प्राप्त होते हैं। परन्तु में सब युद्ध भारतीय शासकों के बीच या भारतीय शासकों द्वारा ही किये जात थे। भारत में विदेशी आक्रमण कब व कहाँ से प्रारम्भ हुए इसकी निश्चित जानकारी हमें नहीं होती। परन्तु भारत की सम्पन्ता के कारण अनेकों विदेशी जातियां भारत की ओर आकर्षित हुई उनमें सर्वप्रथम आक्रमण ईरान कि हखमानी वंश के संस्थापक साइरस–2 (कुरूष) को माना जाता है। इस आक्रमण के बारे में हमें विस्तृत जानकारी तो प्राप्त नहीं होती परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह आक्रमण असफल रहा था। यह आक्रमण 550 ई.पू. के लगभग हुआ था। तत्पश्यात साइरस ने कुछ समय पश्चात पूनः आक्रमण किया तथा हिन्दुकुश पर्वत के दक्षिण में रहने वाली स्थानीय जातियों को अपने अधीन किया। परन्तु प्रारम्भिक विदेशी आक्रमणों का भारत पर विशेष प्रभाव नही हुआ। भारतीय शासकों के प्रबल प्रतिरोध ने इन आक्रमणों को लगातार असफल किया ये आक्रान्ता भारत में अपना प्रभाव स्थापित न कर सकें। परन्तु हमे यह भी स्वीकर करना होगा कि विदेशी आक्रन्ताओं का दबाव सदैव भारत पर बना रहा। साइरस के आक्रमण के कुछ समय पश्चात ही ईरान की तरफ स दूसरा आक्रमण भी हुआ। इस आक्रमण का नतृत्व दारवहु (दास) द्वारा किया गया। दारा के तीन अभिलेख हमें बेहिस्तून, पार्सपोलिस तथा नक्शेरूस्तम से प्राप्त हुए हैं। इन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि दारा ने सिंघ के तटवर्ती प्रदेशों पर अधिकार किया था। भारत पर ईरानी आक्रमणों को मात्र राजनैतिक नही माना जा सकता। इन आक्रमणों को प्रभाव लम्बें समय तक भारत के विभिन्न क्षेत्रों पर हुआ। ईरानी आक्रमणों ने विदेशियों के द्वार भारत के लिये खोल दिये अब इन्हीं रास्तों से से भविष्य में भी भारत पर आक्रमण होने लगे।

शब्द संकेतः– सायरस, दारा, बेहिस्तून अक्षिलेख, पसीयोलिस।

भारत पर प्रथम विदेशी आक्रमण फारस के राजाओं द्वारा किये गये। इन आक्रमणकारी राजवंशों में हखमानी वंश के राजा प्रमुख थे।[1] भारत पर प्रथम विदेशी आक्रमण ईरान के सम्राट सायरस द्वारा किया गया लेकिन सायरस को इस आक्रमण में कोई सफलता नहीं मिली। सायरस 559 ई.पू. फारस का राजा था। यह माना जाता है कि इसी सायरस ने 550 ई.पू. बलूचिस्तान के रास्ते से भारत पर आक्रमण का प्रयास किया था किन्तु उसे इस आक्रमण में विशेष सफलता नहीं मिली थी। सम्भवतः इसी सायरस का नाम कुरूस भी रहा होगा। 550 ई.पू. किये गये इस आक्रमण में ईरानी आक्रमणकारी को जान बचा कर भागना पड़ा। परन्तु प्रथम विफलता से वह निराश नहीं हुआ। अबकी बार उसने काबुल के रास्ते से पुनः भारत पर आक्रमण किया उसने हिन्दुकुश पर्वत के दक्षिण में रहने वाली अनेकों जातियों को अपने अधीन किया। उसने कपिशा नगरी को नष्ट किया और आगे बढ़कर अश्वकों और पक्थों का प्रदेश जीता। स्ट्रबों का कहना है कि कुरूस ने अपनी सहायता के लिए क्षुद्रकों की मदद ली थी।[2] सम्भवतः इस युग में काबुल घाटी का अधिकांश भाग कुरूष की अधीनता को स्वीकार करता था। कुरूष के पश्चात उसके उत्तराधिकारी का काम्बुजय प्रथम, कुरूष द्वितीय, काम्बुजय द्वितीय हुए किन्तु ये सभी शासक अपने पश्चिमी भाग के संघर्षों में इतना अधिक व्यस्त रहे कि उन्हे भारत की ओर बढ़ने का अवसर ही न मिल सका। अतः यह कहा जा

सकता है कि भारत पर होने वाले प्रारम्भिक विदेशी आक्रमण कोई विशेष सफलता प्राप्त न कर सके। भारतीय शासकों के प्रबल प्रतिरोध व उनके स्वयं की आन्तरिक समस्याओं के कारण वे भारत में अपना प्रभाव स्थापित न कर सके। परन्तु विदेशी आक्रान्ताओं का दबाव लगातार भारत पर बना रहा। ईरान की तरफ से दूसरा आक्रमण दारयवहु (दारा) जिसने लगभग 522 ई.पू. से 486 ई.पू. तक शासन किया। उसने कुरूष द्वारा किये प्रयासों को आगे बढ़ाया। दारा को कुरूष से अधिक सफलता प्राप्त हुई। बेहिस्तून अभिलेख (520–518ई.पू.) में गन्धार का उल्लेख उन देशों में है जो उसके अधीन थे पर्सीपोलिस और नक्शेरूस्तम अभिलेखों में सिंधु भी गांधार के साथ उल्लेखित है[3] उत्कीर्ण लेखों से ज्ञात होता है कि उसने पंजाब गंधार कम्बोज व सिंध पर अधिकार किया था। भारत में जीते हुए प्रदेश दारा के इक्कीस प्रांतों में एक थे हेरोडोटस भारतीय विजयों को 20 वें प्रांत में रखते हुए कहता है कि भारतीय प्रांत 360 टेलण्ट स्वर्ण देता है जो लगभग 12 लाख 10 हजार पौण्ड के बराबर होते थे।[4] एक अन्य स्थल पर हरोडोटस बताता है कि 517 ई.पू. लगभग दारा ने स्काइलैक्स की अधीनता में एक सेना सिंधु नदी का पता लगाने भेजा था। दारा की मृत्यु के बार दारा पुत्र क्षहयार्ष (जर्गजीज जरक्सीज) 486–465 ई.पू. गद्दी पर बैठा। सहयार्ष जिस पर आकलंन पर अपने अधिकार को लाए रखा। क्षहयार्ष का युग धार्मिक उन्माद का युग था। उसक शासन काल में भारत में धार्मिक असहिष्णुता का प्रारम्भ हुआ। सम्भवतः यह भारत का प्रथम उन्मादी शाासक था। खुदाई में प्राप्त अवशेषों से ज्ञात होता है कि क्षहयार्ष ने अपनी धार्मिक कट्टरता का परिचय देते हुए कुछ देवताओं के मन्दिरों को तुड़वा दिया था और यह आदेश दिया था कि देवताओं की पूजा नहीं की जावेगी। जहां अभी तक देवताओं की पूजा होती थी वहां राजा अहूरमज्दा और प्रकृति पूजा प्रारम्भ करवा दी थी। भारतीय राजनीतिक में यह प्रथम शासक था जिसने अपनी धार्मिक कट्टरता का परिचय दिया था। हेरोडारस ने उस समय के गन्धार के बारे में लिखा है कि गन्धार के सिपाही तीर कमान व छोटे भाले अपने पास रखते थे। भारतीय सिपाही सूती वस्त्र पहनते व बैंत का धनुष अपने पास रखते थे। उनके तीर विशेष प्रकार के होते थे। तीरों के सिरों पर लोहा लगा होता था जो कि तीरो को अधिक नुकीला व संहारक बना देता था। जर्गजीत ने ग्रीस (युनान) पर आक्रमण किया था। यूनान के विरूद्ध किये इस आक्रमण में गांधार निवासी सैनिक भी सम्मिलित थे। परन्तु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि भारतीय सैनिक वेतन भोगी सैनिकों के रूप में उसकी सेना में सम्मिलित हुए थे। डॉ. मजुमदार का कथन है कि ये सैनिक भाड़े के सैनिक हो सकते हैं। डॉ. रय चौधरी का कहना है कि भारत कदाचित उन देशों में था जिन्हे पारसिक नरेश क्षहयार्ष जर्गजीत के धार्मिक क्रोध को सहना पड़ा था। क्षहयार्ष ने देवों के स्थान पर ऋतम की पूजा करने को विवश किया था। [6] धीरे–धीरे भारत पारसी प्रभाव कम होने लगा। 465–405 ई.पू. तक अर्त क्षहयार्ष ने शासन किया तदपश्चात दारा द्वितीय 425–359 गददी पर बैठा तदन्तर अर्तसहयार्ष–2 (405–359ई.पू.) शासक बना। अर्तसहयार्ष नरेशों के शासन काल में पर्सीपोलिस अभिलेख लिखवाया गया था। इस समाधि अभिलेख की समाधि में सम्राट के सिंहासन के पास भेंट लाने वाले प्रजाजनों की वैसी ही मूर्तियां मिलती है जैसी दारा प्रथम की समाधि पर प्राप्त होती है। इन मूतियों के नीचे सतगुदीय (यह सतगुदीय है) इसंगदरिया (यह गंधारवासी है) और इसं हिन्दुविश (यह हिन्दुवासी है) लेख लिखे हुए है। इन लेखों से स्पष्ट होता है कि कम से कम अर्तक्षहयार्ष प्रथम अथवा दितीय के काल तक भारतीय प्रांतों पर ईरानी नियत्रंण बना हुआ था।[7] इसके उपरान्त दारा तृतीय (336–330 ई.पू.) शासक बना। इसके शासनकाल में सिकन्दर का आक्रमण ईरान व भारत पर हुआ। दारा तृतीय सिकन्दर के हाथों पराजित हुआ। विजेता सिकन्दर ने सारे ईरानी प्रदेशों को रोंद दिया। इसके साथ ही ईरानी प्रभुत्व वाले भारतीय प्रदेश भी स्वतंत्र हो गए। 327 ई.पू. में सिकन्दर के आक्रमण के समय भारत में कोई ईरानी क्षत्रय नहीं था।[8]

इतिहासकार हेरोडोटस के विवरण के ज्ञात होता है कि भारत ईरान का घनी आबादी वाला प्रदेश था। भारतीय प्रदेश अत्यन्त सम्पन्न थे। इसी सम्पन्नता के कारण इन प्रदेशों से काफी आय ईरानी साम्राज्य को होती थी। भारत में काफी सोना था। भारत के पश्चिमोत्तर में सोने की खाने थीं इसके अलावा नदी की बालु से भी सोना प्राप्त किया

जाता था। कुछ मात्रा में तिब्बत से आने वाले भोटिया व्यापारियों से भी सोना मंगाया जाता था।[9] गंधार ईरानी साम्राज्य का 7वां तथा भारत 20 वां प्रांत था।[10] राय चौधरी का मानना है कि भारत के बारे में हेरोडोटस ने जो कुछ लिखा है उससे स्पष्ट है कि सिंधु घाटी और राजपूताना का पश्चिमी भाग भारत माना जाता था। इतिहासकार कर्टियस ने लिखा है भारत के पूर्व में बालू ही बालू है। स्पष्ट है ईरानी साम्राज्य के अन्तर्गत पश्चिमोत्तर का भारतीय प्रदेश ईरानी प्रभाव क्षेत्र था। व्यापार व अपनी प्राकृतिक सम्पन्नता के कारण ये प्रदेश आर्थिक रूप से काफी सम्पन्न माने जाते थे। व्यापार तथा खनिज पदार्थों की बहुलता के कारण यहॉ से ईरानी साम्राज्य को काफी कर प्राप्त होते थे।

भारत पर ईरानी आक्रमण मात्र राजनीतिक नहीं थे। ईरानी साम्राज्य के प्रभाव के कारण आगे आने वाले भारतीय साम्राज्यों पर ईरानी प्रभाव दिखाई देन लगा। साम्राज्यों को प्रांतों में विभाजित करके शासन व्यवस्था को सहज बनाने की प्रथा ईरानी थी। प्रांत विभाजन प्रणाली भारत में शासकों के लिए अनुकरणीय बन गयी। शक–कुषाण शासको की शासन प्रणाली पर बहुत कुछ ईरानी प्रभाव दिखाई देता है। आर.एस.शर्मा के अनुसार यूनानियों को पारसियों से ही भारत विजय की प्रेरणा प्राप्त हुई थी। भारतीय शासकों ने दरबार की भव्यता की परम्परा ईरानी शासकों से ही प्राप्त की थी। मोर्य शासकों ने परसीक दरबारी भव्यता का अनुकरण किया। गुलाम शासक बलबन ने दरबार को भी ईरानी तरीके से भव्य बनाने का प्रयास किया था। उसने फारसी परम्परानुसार अपने दरबार में सिजदा और पायबोस की प्रथा तथा नौरोज (फारसी नववर्ष) का उत्सव मनाने की शुरूआत की।[11] भारतीय शासन परम्परा में राज्यो का विभाजन, केन्द्रीय सेना, धार्मिक सहिष्णुता जैसी बहुत सी समानताएं ईरानी शासन प्रणाली में भी दिखाई देती है। यह कहना बहुत कठिन है कि इन विशेषताओं में कौनसी विशेषता ईरानी प्रभाव से थी व किस का उद्भव भारत की भूमि में ही हुआ था। कौटिल्य ने अपने ग्रंथ अर्थशास्त्र में राजाज्ञा को धर्म से अधिक महत्त्वपूर्ण माना है। यह कहना उचित होगा कि राजाज्ञा को धर्म से उपर मानने का कौटिल्य सिद्धांत शुद्ध भारतीय प्रतीत होता है। यह सम्भव है कि भारत के प्रभाव में आने के बाद कुछ बातों का प्रभाव ईरान की राजनीति पर भी हुआ है। ईरान में भी राजा को भूमि व प्रजा का स्वामी कहा जाता था। भारत में राजा कर का अधिकारी इस कारण था कि वह प्रजा की रक्षा करता था। अतः यह कहना उचित होगा कि भारत पर ईरानी प्रभाव के साथ ईरान की राजनीति को भारत ने भी प्रभावित किया होगा।

विमल चन्द पांडे का कहना है कि मौर्य साम्राज्य के कतिपय अधिकारियों के नाम में पारसीक प्रभाव की झलक मिलती है। उनका कहना है कि गोप और क्षत्रप के अर्थो में पारसीक अफसरों की भारत में नकल दिखाई देती है। केश प्रक्षालन की प्रथा का उल्लेख मेंगस्थनीज करता है। यह प्रथा पारसी लगती है।[12] विमल चन्द पांडे का कहना है कि अशोक के अभिलेखों की शैली बहुत कुछ पारसीक शैली से मिलती जुलती है। अशोक के कुछ शब्द तो पारसीक शब्दों के इतने निकट है कि वे केवल अनुमान से दिखाई देते है दिर्पा के स्थान पर लिपी, निपिष्ट के स्थान पर लिखित। पाश्चात्यकालीन भारतीय नरशों की उच्च ध्वनिकारक उपाधिया भी कदाचित पारसीक सभ्यता की ही चिरकालिक परिणाम रही हो यथा महाराधिराज।[13] अशोक के अभिलेखों का देवानांप्रिय प्रियदर्शी राजा दारा के थापित दारायवोंक्षयाथिय से मिलता है।[14] परन्तु विमल चंद पांडे के सभी तथ्य अनुमान पर आधारित है। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि भाारतीय राजतंत्र की कतिपय परपंराएं ईरानी या पारसी के कारण थी।

कतिपय इतिहासकारों को तक्षशिला से प्राप्त अरायेइक अभिलेख में भी पारसीक प्रभाव दिखाई देता है। कहा जाता है कि उत्तर–पश्चिम भारत में प्रचलित खरोष्ठी लिपि भी पारसीको की ही देन है। इसी तरह मोर्य स्तम्भों पर उत्कीर्ण आकृति को आनन्द कुमार स्वामी अघोमुख कमल मानते है और कुछ विद्वान उसको पर्सीपोलिस का घंटा ही मानते है।[15] पाटलीपुत्र के मोर्य प्रसादों में स्तम्भ मण्डलों का निर्माण हुआ था। कुछ विद्वान इसे भी पारसीक प्रभाव बतलाते है। वासुदेव शरण अग्रवाल अशोक के स्तम्भों पर पारसी प्रभाव से इंकार करते है। उन्होने पारसी व भारतीय

स्तम्भों में अन्तर बताया हैं। उनका कहना है किः–

1. पारसीक स्तभ्भ एक–एक चौकी पर खड़े है परन्तु अशोक के स्तम्भों के नीचे चौकी नहीं है।
2. पारसीक स्तम्भ अनेक पाषाण खण्डों को जोड़ कर बनाए है जबकि स्तम्भ एकाश्मीय है।

इस तरह वासुदेवशरण अगवाल के तर्को को सही माना जा सकता है तथा अशोक के स्तम्भों को ईरानी प्रभाव नहीं कहा जा सकता। ईरानी विजयों ने भौगोलिक अनुसंधानों तथा व्यापारिक गतिविधियों को भी प्रोत्साहित किया। इस काल में ईरानी यहां से सोना ही नही बल्कि वे कीमती लकड़ी व हाथी दांत भी यहां से ले गये।[16] यहां की जनशक्ति का भी इन लोगों ने लाभ उठाया होगा। ईरानियों ने यूनान को यदि भारतीय धनुर्षारियों एवं भाला फेंकने वालों का परिचय दिया तो उन्होंने यूनान एवं मेसीडोन के शासकों को विजयों एवं सांस्कृतिक हस्तक्षेप का मार्ग भी दिखाया।[17]

फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि पारसीक आक्रमणों ने कुछ प्रभाव अवश्य छोड़े। इन आक्रमणों के कारण भारत का बाह्म देशों से संबंध स्थापित हुआ। भारत का पश्चिम से संबंध हुआ और व्यापारियों का आवगमन पश्चिमी देशों की तरफ होने लगा जिससे भारतीय व्यापार में पर्याप्त वृद्धि हुई। पश्चिम से व्यापार बढ़ने के कारण अत्यधिक मात्रा में सोना भारत पहुचने लगा। व्यापारिक साक्ष्य के रूप में पश्चिमोत्तर भारत में पर्याप्त ईरानी मुद्राएं प्राप्त हुई है। किन्तु यह भी सच है कि भारत पर ईरानी आक्रान्ताओं ने आक्रमण का जो रास्ता दिखायां उसके परिणाम स्वरूप भविष्य में भारत पर आक्रमणों की श्रृंखला शुरू हुई। भारत के सीमान्त प्रदेश विदेशी गतिविधियों का केन्द्र बन गए। सीमान्त प्रदेश में विदेशी बसने के कारण भारतीय सीमाएं असुरक्षित हुई। इसके साथ ही सीमान्त प्रदेश विदेशी आवागमन के केन्द्र बन गए।

***व्याख्याता, इतिहास**
शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह राजकीय महाविद्यालय
सवाई माधोपुर (राज.)

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. राजबली पाण्डे, प्राचीन भारत, विश्वविद्यालय प्रकाशनः वाराणसी 2010 पृष्ठ 149
2. हेमचन्द रय चौधरी, प्राचीन भारत का राजनितिक इतिहास, इलाहबाद, 2012, पृष्ठ 178
3. विमल चन्द पाण्डे, प्राचीन भारत का राजनीतिक सांस्कृतिक इतिहास, सेन्ट्रल पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद, 2011
4. हेमचन्द राय चौधरी, पूर्वोक्त, पृष्ठ 179
5. विमल चन्द पाण्डे पूर्वोक्त, पृष्ठ 226
6. विमल चन्द पाण्डे पूर्वाक्त, पृष्ठ 227
7. राजबली पाण्डेय सेन, ओल्ड पर्शियन इन्स्क्रिप्शन, पृष्ठ 172
8. हेमचन्द राय चौधरी, प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास, किताब महल, इलाहबाद, 2012, पृष्ठ 179
9. हेमचन्द राय चौधरी, पूर्वोक्त, पृष्ठ 189

10. हेमचन्द राय चौधरी, पूर्वोक्त, पृष्ठ 189
11. डॉ. कृष्णचन्द माथुर, डॉ. नारायण माली, मध्यकालीन भारत का इतिहास, जैन प्रकाशन मंदिर, जयपुर, पृष्ठ 70
12. विमल चन्द पाण्डे, पूर्वोक्त, पृष्ठ 180
13. विमल चन्द पाण्डे, पूर्वोक्त, पृष्ठ 228
14. विमल चन्द पाण्डे, पूर्वोक्त, पृष्ठ 222
15. विमल चन्द पाण्डे, पूर्वोक्त, पृष्ठ 229
16. विमल चन्द पाण्डे, पूर्वोक्त, पृष्ठ 229
17. डॉ. हमेचन्द राय चौधरी, पूर्वोक्त, पृष्ठ 180